विषय-परिचय ।

***

षट्खण्डागमके चतुर्थ खण्डका नाम वेदना है। इस खण्डकी उत्पत्तिका कुछ परिचय पुस्तक १ की प्रस्तावनाके पृ. ६५ व ७२ पर कराया जा चुका है व इसकी खण्डव्यवस्थाके सम्बन्धमें जो शंकायें उत्पन्न हुई थीं उनका निराकरण पुस्तक २ की प्रस्तावना पृ. १५ आदि पर किया जा चुका है। इस खण्डमें अग्रायणीय पूर्वकी पांचवी वस्तु चयनलब्धिके चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृतिके चौबीस अनुयोगद्वारोमेंसे प्रथम दो अर्थात् कृति और वेदना अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा की गई है, एवं वेदना अधिकारका अधिक विस्तार होनेके कारण सम्पूर्ण खण्डका नाम ही वेदना रखा गया है।

प्रस्तुत पुस्तकमें कृति अनुयोगद्वारकी प्ररूपणा है। इसमें प्रारम्भमें सूत्रकार भगवन्त भूतबलि द्वारा 'णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं' इत्यादि ४४ सूत्रोंसे मंगल किया गया है। ठीक यही मंगल 'योनिप्राभृत' ग्रन्थमें गणधरवलय मंत्रके रूपमें पाया जाता है। यह ग्रन्थ धरसेनाचार्य द्वारा उनके शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलिके निमित्त रचा गया माना जाता है। इसका विशेष परिचय प्रथम पुस्तककी प्रस्तावनाके पृ. २९ आदि पर कराया है। (देखिये Comparative and Critical Study of Mantrashastra by M. B. Jhaveri Appendix A.) । इन मंगलसूत्रोंकी टीकामें आचार्य वीरसेन स्वामीने देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, ऋजुमति व विपुलमति मनःपर्यय, केवलज्ञान एवं मतिज्ञानके अन्तर्गत कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पदानुसारिणी और संभिन्नश्रोतृबुद्धिकी विशद प्ररूपणा की है। उक्त बुद्धि ऋद्धिके साथ ही यहां अन्य सभी ऋद्धियोंका मननीय विवेचन किया गया है। इन मंगलसूत्रोमें अन्तिम सूत्र 'णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स' है। इसकी टीकामें धवलाकारने विस्तारसे विवेचन करके उक्त मंगलको अनिबद्ध मंगल सिद्ध किया है, क्योंकि, वह प्रस्तुत ग्रन्थकारकी रचना न होकर गौतम स्वामी द्वारा रचित है। धवलाकार जीवस्थान खण्डके आदिमें किये गये पंचणमोकार मंत्र रूप मंगलको निबद्ध मंगल कह आये हैं। इस भेदके आधारसे धवलाकारका यह स्पष्ट अभिप्राय जाना जाता है कि वे भगवान् पुष्पदन्ताचार्यको ही णमोकारमंत्रके आदिकर्ता स्वीकार करते हैं। इसका सविस्तर विवेचन पुस्तक २ की प्रस्तावनाके पृ. ३३ आदि पर किया जा चुका है। उस समय पत्र-पत्रिकाओमें इस विषयकी चर्चा भी चली और णमोकारमंत्रके अनादित्वपर जोर दिया गया। किन्तु विद्वानोने धवलाकारके अभिप्रायको न समझने व उसपर गम्भीरतासे विचार करनेका प्रयत्न नहीं किया।

टीकाकारने इस मंगलदण्डकको देशामर्शक मानकर निमित्त, हेतु, परिणाम व नामका भी निर्देश कर द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी अपेक्षा कर्ताका विस्तृत वर्णन किया है, जो जीवस्थानके व विशेषकर जयधवला (कषायप्राभृत) के प्रारम्भिक कथनके भी समान है।

सूत्र ४५ में बतलाया है कि अग्रायणीय पूर्वकी पंचम वस्तुके चतुर्थ प्राभृतका नाम कर्मप्रकृति है। उसमें कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि २४ अनुयोगद्वार हैं। इनमें प्रथम कृतिअनुयोगद्वार प्रकृत है। इस सूत्रकी टीका करते हुए वीरसेन स्वामीने उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नयकी उसी प्रकार पुनः विस्तारपूर्वक प्ररूपणा की है जैसे कि जीवस्थानके प्रारंभमें एक बार की जा चुकी है।

सूत्र ४६ में नामकृति, स्थापनाकृति, द्रव्यकृति, गणनकृति, ग्रन्थकृति, करणकृति और भावकृति, ये कृतिके सात भेद बतलाये हैं। इनकी संक्षिप्त प्ररूपणा इस प्रकार है --

१. एक व अनेक जीव एवं अजीवमेंसे किसीका 'कृति' ऐसा नाम रखना नामकृति है।

२. काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोत्तकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म दन्तकर्म व भेंडकर्ममें सद्भावस्थापना रूप तथा अक्ष एवं वराटक आदिमें असद्भावस्थापना रूप 'यह कृति है' ऐसा अभेदात्मक आरोप करना स्थापनाकृति कहलाती है।

३. द्रव्यकृति आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। इनमें आगमद्रव्यकृतिके स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम, ये नौ अधिकार हैं। यहां वाचनोपगत अधिकारकी प्ररूपणामें व्याख्याताओं एवं श्रोताओंको द्रव्य, क्षेत्र काल व भाव रूप शुद्धि करनेका विधान बतलाना गया है। आगे चलकर स्थित व जित आदि उपर्युक्त नौ अधिकारों विषयक वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति व धर्मकथा आदि रूप उपयोगोंकी प्ररूपणा हैं।

नोआगमद्रव्यकृति ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार है। इनमेंसे ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकृतिके भी आगमद्रव्यकृतिके ही समान स्थित-जित आदि उपर्युक्त नौ अधिकार कहे गये हैं। कृतिप्राभृतके जानकार जीवका च्युत, च्यावित एवं त्यक्त शरीर ज्ञायकशरीर-द्रव्यकृति कहा गया है। जो जीव भविष्यत् कालमें कृतिअनुयोगद्वारोंके उपादान कारण स्वरूपसे स्थित है, परन्तु उसे करता नहीं है, वह भावी नोआगमद्रव्यकृति है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकृति ग्रन्थिम, वाइम, वेदिम, पूरिम, संघातिम, अहोदिम, निक्खोदिम, ओवेल्लिम, उद्वेल्लिम, वर्ण, चूर्ण और गन्धविलेपन आदिके भेदसे अनेक प्रकार है।

४. गणनकृति नोकृति, अवक्तव्यकृति और कृतिके भेदसे तीन भेद रूप अथवा कृतिगत संख्यात असंख्यात व अनन्त भेदोंसे अनेक प्रकार भी है। इनमेंसे 'एक' संख्या नोकृति, 'दो' संख्या अवक्तव्यकृति और 'तीन' को आदि लेकर संख्यात, असंख्यात व अनन्त तक संख्या कृति कहलाती है। संकलना, वर्ग, वर्गावर्ग, घन व घनाघन राशियोंकी उत्पत्तिमें निमित्तभूत गुणकार, कलासवर्ण तक भेदप्रकीर्णक जातियां, त्रैराशिक व पंचराशिक इत्यादि सब धनगणित है। व्युत्कलना व भागहार आदि ऋणगणित कहलाते हैं। गतिनिवृत्तिगणित और कुट्टिकार आदि धन-ऋणगणितके अन्तर्गत हैं। यहां कृति, नोकृति और अवक्तव्यकृतिके उदाहरणार्थ ओघानुगम, प्रथमानुगम, चरमानुगम और संचयानुगम, ये चार अनुयोगद्वार कहे गये हैं। इनमें संचयानुगमकी प्ररूपणा सत्-संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंके द्वारा विस्तारपूर्वक की गई है।

५. लोक, वेद अथवा समयमें शब्दसन्दर्भ रूप अक्षरकाव्यादिकोंके द्वारा जो ग्रन्थरचना की जाती है वह ग्रन्थकृति कहलाती है। इसके नाम, स्थापना, द्रव्य व भावके भेदसे चार भेद करके उनकी पृथक् प्ररूपणा की गई है।

६. करणकृति मूलकरणकृति और उत्तरकरणकृतिके भेदसे दो प्रकार है। इनमें औदारिकादि शरीर रूप मूलकरणके पांच भेद होनेसे उसकी कृति रूप मूलकरणकृति भी पांच प्रकार निर्दिष्ट की गई है। औदारिकशरीरमूलकरणकृति, वैक्रियिकशरीरमूलकरणकृति और आहारकशरीरमूलकरण-कृति, इनमेंसे प्रत्येक संघातन, परिशातन और संघातन-परिशातन स्वरूपसे तीन तीन प्रकार हैं। किंतु तैजस और कार्मणशरीरमूलकरणकृतिमेंसे प्रत्येक संघातनसे रहित शेष दो भेद रूप ही हैं।

विवक्षित शरीरके परमाणुओंका निर्जराके विना जो एक मात्र संचय होता है वह संघातन-कृति है। यह यथासंभव देव व मनुष्यादिकोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, क्योंकि, उस समय विवक्षित शरीरके पुद्‍गलस्कन्धोंका केवल आगमन ही होता है, निर्जरा नहीं होती।

विवक्षित शरीर सम्बन्धी पुद्‍गलस्कन्धोंकी आगमनपूर्वक होनेवाली निर्जरा संघातन-परिशातनकृति कहलाती है। वह यथासम्भव देव-मनुष्यादिकोंके उत्पन्न होनेके द्वितीयादिक समयोंमें होती है, क्योंकि, उस समय अभव्य राशिसे अनन्तगुणे और सिद्ध राशिसे अनन्तगुणे हीन औदारिकादि शरीर रूप पुद्‍गलस्कन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों ही पाये जाते हैं।

उक्त विवक्षित शरीरके पुद्‍गलस्कन्धोंकी संचयके विना होनेवाली एक मात्र निर्जराका नाम परिशातनकृति है। यह यथासम्भव देव-मनुष्यादिकोंके उत्तर शरीरके उत्पन्न करनेपर होती है, क्योंकि, उस समय उक्त शरीरके पुद्‍गलस्कन्धोंका आगमन नहीं होता।

तैजस और कार्मण इन दोनों शरीरोंकी अयोगकेवलीके परिशातनकृति होती है, कारण कि उनके योगोंका अभाव ही जानेसे बन्धका भी अभाव हो चुका है। अयोगकेवलीको छोड शेष सभी संसारी जीवोंके इन दोनों शरीरोंकी एक संघातन-परिशातनकृति ही है, क्योंकि, सर्वत्र उनके पुद्गलस्कंन्धोंका आगमन और निर्जरा दोनों ही पाये जाते हैं। उक्त दोनों शरीरोंकी संघातन-कृति सम्भव नहीं है। कारण इसका यह है कि यह संसारी प्राणियोंके तो हो नहीं सकती, क्योंकि, उनके उक्त दोनों शरीरोंके पुद्गलस्कन्धोंका जैसे आगमन होता है वैसे ही उसीके साथ निर्जरा भी होती है। अब रहे सिद्ध जीव, सो उनके भी वह सम्भव नहीं है, क्योंकि, उनके बन्धकारणोंका पूर्णतया अभाव हो चुका है।

आगे जाकर उपर्युक्त पांचों मूलकरणकृतियोंकी प्ररूपणा पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, इन तीन अधिकारों द्वारा तथा सत्-संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंके भी द्वारा विस्तारपूर्वक की गई है।

असि, वासि, परशु, कुदारी, चक्र, दण्ड, वेम व नालिका आदि उत्तर करण अनेक माने जाते हैं। अत एव उत्तर करणोंके अनेक होनेसे उनकी कृति रूप उत्तरकरणकृति भी अनेक प्रकार कही गई है।

७. कृतिप्राभृतका जानकार उपयोग युक्त जीव भावकृति कहा जाता है। उपर्युक्त सातों कृतियोंमें यहां गणनकृतिको प्रकृत बतलाया है, कारण कि गणनाके विना अन्य अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा असम्भव हो जाती है।